

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य
- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 जलवायु परिवर्तन और मानव प्रवास
- 3.3 जल प्रबंधन
- 3.4 वन
- 3.5 पशु और पौधे : पालतूकरण, प्रसार, भक्ति और रक्षा
 - 3.5.1 पशु और सामाजिक संरचना
 - 3.5.2 वानस्पतिक आदान-प्रदान
- 3.6 कृषक समाज और शहरीकरण
- 3.7 खनिज संसाधन
- 3.8 सारांश
- 3.9 शब्दावली
- 3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 3.11 संदर्भ ग्रंथ

* डॉ. ऋचा सिंह, पी.एच.डी., इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप सीखेंगे :

- कैसे मानव ने बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए स्वयं को विभिन्न क्षेत्रों के अनुरूप अनुकूलित किया;
- कैसे मनुष्यों ने धीरे-धीरे अपने परिवेश और पारिस्थितिकी तंत्र के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त की;
- पौधों और जानवरों के पालतूकरण और उनके प्रसार ने किस प्रकार प्रारंभिक मानव समाजों के बीच संचार को प्रोत्साहित किया; और
- कैसे मानवीय हस्तक्षेप ने पर्यावरणीय वातावरण को बदल दिया।

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल में मानव की उन्नति प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर निर्भर थी। प्रागैतिहासिक काल में मानव समुदाय प्रकृति पर बहुत अधिक निर्भर थे, विशेष रूप से भोजन और आश्रय के लिए। उनकी बस्तियाँ नदी घाटियों पर या झीलों या नदियों के पास स्थित होती थीं चूंकि मानव घने जंगलों को साफ़ करने में सक्षम नहीं था। नवपाषाण काल में उन्होंने पौधों और जानवरों को पालतू बनाने की शुरुआत की तथा एक गतिहीन जीवन शैली को अपनाया। ताम्रपाषाण युग के आगमन के साथ ही धातु अयस्क को गलाने और धातु की कलाकृतियों को बनाने की तकनीक की खोज हुई। और इस प्रकार तांबा मनुष्यों द्वारा उपयोग

किए जाने वाली सबसे पहली धातु बना। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विकास था। 2600 बी.सी.ई. के आसपास सिंधु नदी और घग्गर-हकरा¹ नदी के मैदानों में भारतीय उपमहाद्वीप की प्रथम नगरीय सभ्यता के अनेक स्थल अस्तित्व में आए जिनकी विशिष्ट विशेषताएं जैसे नगर नियोजन (गढ़वाले और वर्गीकृत शहर, ईंट संरचनाएं, सार्वजनिक भवन, सड़क योजना, जल निकासी व्यवस्था और गृह नियोजन), वजन और माप प्रणाली, मुहरों पर चित्रात्मक लेखन प्रणाली, विविध शिल्प, लंबी दूरी का व्यापार और कांस्य का उपयोग उल्लेखनीय हैं। लगभग 1500 बी.सी.ई. में शहरीकरण का हास स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। और गंगा के मैदानों में ग्रामीण और आदिवासी समुदायों का विकास हुआ। आर्यों के प्रवासन के फलस्वरूप उन नदी घाटियों, जिनकी जलवायु प्रारूपिक रूप से गीली थी, का कृषि औपनिवेशीकरण होना शुरू हुआ। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तर भारत में 16 प्रमुख राज्य या प्रशासनिक इकाईयाँ, जिन्हें महाजनपद कहा गया, विकसित हुए। महाजनपद काल के आगमन से दूसरे शहरीकरण के प्रक्रम का आरम्भ हुआ। साथ ही साथ, धातु मुद्रा और अधिक जटिल समाज की शुरुआत हुई। इन महाजनपदों में मध्य गंगा के मैदानों में स्थित मगध² ने हर्यक वंश के बिंबियार के नेतृत्व में स्वयं को एक साम्राज्य के रूप में रूपांतरित कर लिया। इस परिवर्तन का श्रेय मुख्यतः इस क्षेत्र के शासकों के प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जंगल, खनिज संसाधन

¹ जहाँ सरस्वती नदी बहती थी लेकिन अब यह एक सूखी नदी प्रणाली है।

² आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार।

इत्यादि के इस्तेमाल करने की क्षमता को दिया जा सकता है। जैसे समाज पूर्व-राज्य से राज्य में परिवर्तित हुआ, मानव और पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया अधिक से अधिक गतिशील होती गई। निम्नलिखित अनुभागों में मानव-पर्यावरण संबंध एवं इस संबंध से प्रभावित ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर आप ऐतिहासिक समझ प्राप्त करेंगे।

3.2 जलवायु परिवर्तन और मानव प्रवास

अब आप देखेंगे कि कैसे जलवायु परिवर्तन और मानव प्रवास के बीच के संबंध मानव बस्तियों के विकास साथ ही साथ उनके पतन में भी उत्तरदायी थे। इसलिए मानव गतिविधियाँ पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर थीं। सिंधु घाटी सभ्यता का पतन विशेषतः 1900 बी.सी.ई. के बाद देखा गया। पुरातत्वविदों और इतिहासकारों ने इस सभ्यता के पतन के पीछे अलग-अलग तर्क दिए।

- आर्य आक्रमण सिद्धांत (ब्रिटिश पुरातत्वविद मोर्टिमर व्हीलर द्वारा प्रतिपादित जो अब एक स्वीकार्य सिद्धांत नहीं है)।
- भूकंप (रॉबर्ट एल. रायके और डेल्स)।
- बाढ़ (मैके और एस. आर. राव)।
- नदी मार्ग में परिवर्तन (एच. टी. लैम्ब्रिक, एम. एस. वल्स और जॉर्ज डेल्स)।
- पारिस्थितिक गड़बड़ी (वनों की कटाई के कारण)।
- जलवायु परिवर्तन (हाल के पुराजलवायु अध्ययनों के अनुसार)।

अन्य प्रारंभिक समाजों में भी, जैसे मेसोपोटामिया, मिस्र और उत्तरी चीन में, उनके पतन के कारण के रूप में जलवायु परिवर्तन को स्वीकार किया गया है।

शुष्क जलवायु के प्रबल साक्ष्य मध्य अभिनव युग के दौरान दक्षिण एशिया में मिलते हैं। परिपक्व से उत्तर-हड़प्पा काल तक सिंधु के बाढ़ के मैदानों में बसे परिष्कृत शहरी केन्द्रों को छोड़ दिया गया और लोग पश्चिम से पूर्व में घग्गर-हाकरा को पलायन कर गए। 1900 बी.सी.ई. तक सिंधु घाटी के प्रमुख स्थल जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हूदड़ो, कोटदीजी आदि को पूरी तरह से छोड़ दिया गया था। लगभग 1800 बी.सी.ई. हिमालय की तलहटी और गंगा-यमुना दोआब में छोटी-छोटी गाँवों की बसावटों की संख्या बढ़ती जा रही थी। आई. आई. टी. खड़गपुर, वुड्स हाल ओशनोग्राफिक इंस्टीट्यूशन (WHOI), मैसाचुसेट्स और ऐसे अन्य संस्थानों के द्वारा हाल के अध्ययनों के अनुसार इस क्रमिक परिवर्तन का कारण अंतर-उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (Intertropical Convergence Zone) का इंटरट्रॉपिकल कनवर्जेन्स ज़ोन (ITCZ) क्रमिक दक्षिण की ओर पिछले 7000 वर्षों में खिसकना है जिसके परिणामस्वरूप मानसून की विफलता हुई जिससे कृषि प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई। सिंधु घाटी सभ्यता ने पानी की कमी से निपटने के लिए जल संरक्षण तकनीक विकसित की थी लेकिन ITCZ के लगातार बदलाव ने वहाँ के लोगों को पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया क्योंकि धीरे-धीरे क्षेत्र का शुष्कीकरण होता रहा। घास के मैदानों और शुष्क क्षेत्रों में पनपने वाली वनस्पतियों में वृद्धि व कम मानसून और नदियों के सूखने से खेती मुश्किल हुई। बदलती क्षेत्रीय पारिस्थितिकी अब सभ्यता की अर्थव्यवस्था को बनाए रखने की स्थिति में नहीं थी। नतीजन, लोग तितर-बितर होने लगे। इस क्षेत्रीय बदलाव ने उन्हें जलवायु प्रवासी या जलवायु शरणार्थी बना दिया। प्यावरणीय वातावरण में परिवर्तन जारी रहा और साथ ही साथ लोगों का प्रवास भी।

पहली सहस्राब्दी बी.सी.ई. के दौरान इंडो-आर्यन जो खानाबदोश चरवाहों के छोटे-छोटे समूह थे दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों से पलायन कर गंगा के मैदानी इलाकों में चले गए। और वहाँ मौजूदा समुदायों की कृषि तकनीकों को अपनाया। इस प्रकार, हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि जलवायु प्रारंभ से ही मानव समाज की प्रगति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अब हम समझते हैं कि मनुष्य ने कैसे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करना शुरू किया, उनके शोषण के लिए किस तरह के नवाचारों और संस्थानों की शुरुआत की, इत्यादि।

3.3 जल प्रबंधन

जल हमारे पारिस्थितिकी तंत्र में जीवन का स्रोत है। कई प्रारंभिक बस्तियाँ नदियों के निकट स्थापित की गई थीं क्योंकि नदियाँ पीने के पानी की स्थिर आपूर्ति, आसान परिवहन और फसलों की खेती के लिए उपजाऊ मिट्टी का माध्यम थीं। इस प्रकार प्रारंभिक समाज के उदय में पानी महत्वपूर्ण कारकों में से एक था। आद्य-ऐतिहासिक भारत में जल प्रबंधन प्रणाली के अध्ययन से सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों के जलगति ज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। यह सभ्यता एक नदी सभ्यता के रूप में सिंधु घाटी में विकसित हुई और फली-फूली। सिंधु नदी (जो हिमालय की सबसे लंबी नदी है) के द्विवार्षिक बाढ़ के कारण वहाँ की घाटी की भूमि उपजाऊ थी। इसके बाढ़ के मैदानों के कारण बहुतायत में इस क्षेत्र में चिकनी मिट्टी पाई जाती थी। संरचनाओं के निर्माण के लिए इस चिकनी मिट्टी से बनाई गई ईंटों का उपयोग किया जाता था। परिपक्व हड़प्पा काल में मोहनजोदड़ो जैसे स्थलों पर समंलबाकार ईंटों का

उपयोग कुओं (जिनमें से कुछ 15 मीटर जितने गहरे थे) को अंदर की ओर गिरने से रोकने के लिए किया जाता था। यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी। हड़प्पावासियों ने परिष्कृत जल निकासी और अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणाली विकसित की थी। मोहनजोदड़ो के महान स्नानागार को प्राचीन विश्व के सबसे पुराने सार्वजनिक जलकुंडों में से एक माना जाता है। मोहनजोदड़ो के घरों में स्नान और शौचालय, विस्तृत मलजल प्रणाली और 700 से अधिक कुओं में पानी की व्यवस्था थी। लोथल और इनामगाँव जैसे स्थानों पर वर्षा जल संचयन के लिए छोटे-छोटे बांध बनाए गए थे। लोथल, भोगव नदी (साबरमती की एक सहायक नदी) के किनारे स्थित हड़प्पा सभ्यता का बंदरगाह-शहर था जिसमें ज्वारीय गोदी (dockyard) थी जो समुद्री व्यापार को बढ़ावा देती थी।

दूसरी ओर, कच्छ के रण में स्थिति अलग थी क्योंकि वहाँ कोई ना तो बड़ी नदी थी और ना ही कृषि योग्य उपजाऊ भूमि। कई भूवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि अतीत में यहाँ विभिन्न पर्यावरणीय स्थिति थी और जलवायु वर्तमान की तुलना में थोड़ी अधिक अनुकूल थी। हालांकि यह दिलचस्प है कि हड़प्पा वासियों ने इस शुष्क क्षेत्र में एक बहुत बड़ी बस्ती बनाई ताकि वे गुजरात से निकाले जा रहे अर्ध-कीमती पत्थरों और अन्य खनिज उत्पादों जैसे कच्चे माल का दोहन कर सकें। पुरातत्वविदों का मत है कि ऐसे उत्पादों की आवाजाही को नियंत्रित करने के लिए ही कच्छ के रण में धोलावीरा की स्थापना की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र संभवतः एक नौवहन जलग्रीवा क्षेत्र था जो खाड़ी क्षेत्र के साथ समुद्री व्यापार के साथ-साथ नदी मार्ग के माध्यम से आंतरिक व्यापार के लिए सुरक्षित बंदरगाहों की सविधा

प्रदान करता था। धोलावीरा के हड़प्पावासियों ने इसे निवास करने योग्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर एक जटिल जल प्रबंधन प्रणाली विकसित की थी। यह दो मौसमी जल धाराओं से घिरा हुआ था – मंदसर और मनहर। इन छोटी नदियों पर बांध बनाए गए थे जिससे पानी शहर में बहता था और जलाशय भर जाते थे। बारिश के पानी को इकट्ठा और संचय करने के लिए कई परस्पर जुड़े हुए विशाल टांकाएं (tank) भी थे। सीढ़ीदार कुओं के साथ अतिरिक्त शिला को काटकर बनाए गए जलाशय भी पाए गए हैं। धोलावीरा का लगभग 15–25 प्रतिशत जल भंडारण के लिए आवंटित किया गया था। हालांकि कुछ इतिहासकार यह भी मानते हैं कि हड़पावासियों की जल प्रबंधन प्रणाली ने इस सभ्यता के पतन में योगदान दिया होगा। शिरीन रत्नागर का मानना है कि सिंधु का जलोढ़ क्षेत्र शायद ही गहन खेती के लिए उपयुक्त था और उद्वहन-सिंचाई (lift-irrigation) ने संभवतः इसकी पारिस्थितिक सीमा को पार कर लिया।

DHOLAVIRA, DIST KUTCH, GUJARAT, 2500 B.C.

Among the five most important sites of the Harappan Settlements of the Third Millennium B.C. Dholavira is so far the latest to have been excavated. It has been adjudged as the best example of that civilisation in India.

The city was in three parts - Citadel, Middle Town and Lower Town. Dholavira is better appreciated for its sanitational arrangements and water conservation methods. Half a dozen water reservoirs pucca underground drains, bathrooms, terracotta pipes and well have impressed the town planners and sanitary engineers. The water reservoir in the citadel is 73m long, 29m wide and 8m deep. One water reservoir has a ramp for camels to go down to the water level.



Broken pieces of a pitcher on road receiving wash water from bathroom



Well in citadel
Diameter 4m. Depth 12 m



Terracotta pipe taking wash water from bathroom to a pitcher on road



Underground drain



Water reservoir and well

SOURCE: ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA

उपर्युक्त संग्रहालय पट्टिका में धोलावीरा के जल प्रबंधन प्रणाली जैसे जलाशय, कुआं, भूमिगत नाली आदि की छवियों के साथ दर्शाया गया है। अंतरराष्ट्रीय सुलभ शौचालय संग्रहालय, नई दिल्ली। स्रोत : डॉ. ऋचा सिंह।

सिंधु घाटी सभ्यता की भांति वैदिक युग में भी नदियां महत्वपूर्ण थीं और यह संस्कृति पश्चिमी गंगा घाटी में फली-फूली। आर्य जल को आध्यात्मिक शुद्धि का प्रतीक मानते थे। जल के देवता वरुण को वैदिक भजन संबोधित किए गए हैं। ऋग्वेद में प्रारंभिक वैदिक काल का भूगोल वर्णित है और साथ ही साथ इसमें प्रमुख जल स्रोतों जैसे नदियों, झीलों आदि के संबंध में बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध है। इसमें लगभग 30 नदियों के नाम का उल्लेख है। सिंधु अपनी सहायक नदियों (शुतुद्री, विपास, परुष्नी, अस्किनो, वितस्ता आदि) के साथ सबसे अधिक उल्लेखित नदी है। ऋग्वेद में जल उठाने वाले उपकरणों, जैसे 'अस्माचक्र', का उल्लेख किया गया है। यह संभवतः गहरे कुओं से पानी खींचने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पत्थर से बना एक पहिया था। घटयंत्र या उद्घटन एक अन्य प्रकार का जल उठाने वाला उपकरण था जिसमें पानी उठाने के लिए कई घटों (मिट्टी के बर्तन) से जुड़े पीपे के आकार का पहिये का उपयोग किया जाता था। अथर्ववेद में जलसंशोधन और नदियों से नए जलडमरूमध्य (channel) बनाने का उल्लेख है। लगभग पांचवी बी.सी.ई. से हमारे पास बैल जैसे जानवरों द्वारा काम किए जाने वाले यांत्रिक उपकरणों के संदर्भ हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी युगावरात्रा का वर्णन करते हुए बताती है कि "वह अंसबंध (yoke) और रस्सी से बना यंत्र था जिसके द्वारा बैलों को पानी उठाने के लिए चलाया जाता था"।

नदियों के संगम पर स्थित बस्तियों ने अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया। मगध शासक उदयिन ने अपनी राजधानी को राजगृह से दूसरे रणनीतिक स्थान यानि पाटलिपुत्र में स्थानांतरित कर दिया जो तीन नदियों के संगम पर स्थित था –

गंगा, सोन और पुनपुन, जबकि चौथी नदी घाघरा पाटलिपुत्र के पास गंगा में शामिल होती थी। गंगा और सोन ने उत्तर और पश्चिम में और पुनपुन दक्षिण और पूर्व में राजधानी पाटलिपुत्र को घेर लेती थीं। इस कारण राजधानी को जलदुर्ग माना जाने लगा।³ नदियों ने सिंचाई के प्राकृतिक साधनों को भी सुगम बनाया और क्षेत्र की उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी ने कृषि अधिशेष उत्पादन में योगदान दिया। दक्षिण बिहार की पठारी मिट्टी उत्तर बिहार की तरह उत्पादक नहीं थी। उत्तर भारत की मिट्टी गाद और रेत से समृद्ध थी। इसके परिणामस्वरूप व्यापार और वाणिज्य का भी विकास हुआ क्योंकि परिवहन के लिए नदियों का उपयोग सस्ता और तेज था। इस प्रकार नदियां वाणिज्य और संचार के लिए महत्वपूर्ण हो गईं। चूंकि वहाँ पर्याप्त सड़कें नहीं बनी थीं इसलिए लोगों और सामग्री को नाव से ले जाया जाता था। इसने मगध शासकों को हर तरफ मजबूत संचार स्थापित करने में सक्षम बनाया।

मौर्य साम्राज्य के काल में जल प्रबंधन प्रणाली में और विकास देखा गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा को मापने की तकनीकों का उल्लेख है। इन क्षेत्रों में फसलों को प्राप्त होने वाली वर्षा की मात्रा के आधार पर बोया जाता था। अर्थशास्त्र में जल उठाने वाले उपकरणों, पानी के स्थान को पता करने की तकनीक तथा कई सिंचाई तकनीकों का भी वर्णन मिलता है। चमड़े की थैली के एक बहुत ही कच्चे और सादे उपकरण, जिसे एक कुएं

³ चूंकि राजगृह चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ था इसलिए इसे गिरिदुर्ग कहा जाता था। यह अभेद्य भी था क्योंकि इस काल के दौरान किलों पर धावा बोलने के लिए कोई तोपें नहीं हुआ करती थीं।

से बैल की एक जोड़ी द्वारा खींचा जाता था, को छोड़कर सिंधु घाटी सभ्यता से हमें पानी उठाने वाले उपकरणों के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। मौर्य काल तक हमें बहुत ही परिष्कृत उपकरणों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य बताते हैं कि पानी का उपयोग करने के लिए काश्तकारों को कर का भुगतान करना पड़ता था। इस सिंचाई कर को "उदक भाग" कहा जाता था। यदि वे राज्य द्वारा प्रदान की गई सिंचाई सुविधाओं का उपयोग करते थे तो उन पर लगाया गया कर अधिक था और यदि वे स्वयं या स्थानीय समुदायों द्वारा निर्मित जल संरचनाओं का उपयोग करते थे तो कर अपेक्षाकृत कम था। झीलों की खुदाई, तालाबों के निर्माण आदि जैसे सिंचाई कार्य करने वालों को पांच साल के लिए करों की छूट दी जाती थी। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान राज्यपाल पुष्यगुप्त ने आधुनिक गुजरात में सुदर्शन झील का निर्माण किया था। रुद्रदामन के जूनागढ़ शिलालेख, जो 150 सी.ई. म लिखा गया था, से ज्ञात होता है कि बाद में इसकी मरम्मत शक शासक रुद्रदामन ने करवाई थी क्योंकि भीषण बाढ़ के कारण तटबंध में दरार आ गई थी। 455 सी.ई. में बाढ़ के कारण तटबंध फिर से टूट गया था। समुद्रगुप्त के आदेश से चक्रपालित ने इसका जीर्णोद्धार कराया। गुप्त काल में बड़े पैमाने पर सिंचाई के कार्य किए जाते थे।

चूंकि राज्य जल निकायों पर नियंत्रण करने में सक्षम था इसलिए अधिक से अधिक विविध जल प्रबंधन तकनीकों का फैलाव हो सका। राज्य द्वारा प्रोत्साहित किए गए सिंचाई कार्यों के कारण कार्ल मार्क्स से प्रभावित कार्ल अगस्त विटफोगेल ने अपनी पुस्तक 'ओरिएंटल डेस्पोटिज़्म' में जलीय

(hydraulic) साम्राज्य या जल एकाधिकार साम्राज्य की परिकल्पना की और इस सिद्धांत के अनुसार जल संसाधनों पर नियंत्रण के माध्यम से और सिंचाई की सुविधा प्रदान करके जलीय साम्राज्य ने सत्ता बनाए रखी। विटफोगेल के अनुसार यह केवल निरंकुश राज्य द्वारा ही पूरा किया जा सकता था और यह उत्पादन के एशियाई तरीके (Asiatic Mode of Production) की विशिष्ट विशेषताओं में से एक था। हालांकि इस सिद्धांत की वैधता पर कई इतिहासकारों जैसे आर. एस. शर्मा, रोमिला थापर, इरफ़ान हबीब आदि ने सवाल उठाया है।

दक्षिण भारत में संगम साहित्य तमिलहम में सिंचाई प्रौद्योगिकी और टांकाओं, जल उठाने वाले उपकरणों, जलमार्गों और जलडमरूमध्यों के स्थान और निर्माण पर प्रकाश डालता है। प्रारंभिक चोल शासकों ने पानी के प्राकृतिक स्रोतों का दोहन करने का प्रयास किया। करिकाल चोल नामक पहले और सबसे प्रसिद्ध प्रारंभिक चोल शासक ने कावेरी नदी (जो चोल साम्राज्य की प्रमुख नदी थी) के तट के अतिप्रवाह को नियंत्रित करने के लिए कल्लनई (ग्रेंड एनीकट) बांध का निर्माण किया। नदी के पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। यह बांध पत्थरों से बनाया गया था। कालभ्रों के बाद पल्लवों, पांड्यों और चेरों और शाही चोलों (कावेरी घाटी में) ने भी कई जलाशयों और टांकाओं के निर्माण को बढ़ावा दिया। महेन्द्रवर्मन पल्लव प्रथम (600–630 सी.ई.) ने कई सिंचाई टांकाओं का निर्माण किया जैसे महेन्द्रवाड़ी में महेन्द्र तटकम। पल्लव अभियंता जो तालाबों और बांधों के निर्माण में कुशल थे, उन्हें “जल सूत्रदा” के नाम से जाना जाता था। राज्य ने जलीय कार्यों में स्थानीय लोगों

(व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से) की भागीदारी को भी प्रोत्साहित किया। इस प्रकार, प्रकृति के साथ मानव अंतःक्रिया ने धीरे-धीरे मानवीय हस्तक्षेप को जन्म दिया जिससे पर्यावरणीय पर्यावरण प्रभावित हुआ।

3.4 वन

प्राचीन भारत में वन उन आवश्यक स्रोतों में से एक थे जो मानव समाज के लिए महत्वपूर्ण थे जिस कारण से वनों का शोषण भी देखा गया। शिरीन रत्नागर जैसे इतिहासकारों का मानना है कि हड़प्पावासियों की कांस्य युग की संस्कृति वहाँ की पारिस्थितिक विनाश का कारण हो सकता है। तांबा और कांस्य बनाने के लिए बड़ी मात्रा में लकड़ी की आवश्यकता होती है जिस कारण संभवतः इस क्षेत्र के आसपास के जंगल नष्ट हो गए होंगे। इसके अलावा, हड़प्पावासी बड़े पैमाने पर ग्लेज़ेड फ़ाइनेस धातु से बने आभूषणों के उत्पादन में संलग्न थे। पकी हुई ईंटें, मिट्टी के बर्तन, पत्थर के पात्र, नाव, उपस्कर (furniture) आदि भी बनाते थे। वे अंतर्देशीय और समुद्री व्यापार, दोनों, करते थे। और इन सभी गतिविधियों के लिए बड़े पैमाने पर लकड़ी की खपत की आवश्यकता थी। वैदिक युग में भी वनों की कटाई के उदाहरण स्पष्ट हैं। यह आर्यों द्वारा जंगलों में आग लाने का परिणाम था कि उनकी कृषि बस्तियों का विस्तार गंगा के मैदान में हुआ क्योंकि वे खानाबदोश से गतिहीन कृषि में स्थानांतरित होने लगे थे। इस विस्तार ने प्रारंभिक वैदिक युग के जनों (आदिवासी लोगों की इकाई) को उत्तर-वैदिक काल के जनपदों (जनों के तहत एक छोटी क्षेत्रीय इकाई) और फिर 600 बी.सी.ई. में महाजनपदों (बड़ी क्षेत्रीय इकाई) में बदलने में मदद की। शतपथ ब्राह्मण में विदेघ माधव नामक एक

आर्य सरदार की कहानी का वर्णन है जो अग्नि देव⁴ की सहायता से सरस्वती नदी से सदानीरा/सदानिरा नदी (आधुनिक गंडक) तक जा पहुँचा और इस क्षेत्र का नाम इस प्रथम आर्य उपनिवेशवादी के नाम पर रखा गया जो बाद में महाजनपद काल के दौरान वज्जि अर्थात् मिथिला के विदेहों के महत्त्वपूर्ण गणतांत्रिक राज्यों में से एक के रूप में विकसित हुआ।

वैदिक काल के दौरान वनों को आध्यात्मिक शांति और तपस्वियों और ऋषियों के निवास के रूप में देखा जाता था जहाँ वे गहन ध्यान में विसर्जित कर सकते थे और आध्यात्मिक ज्ञान और अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते थे। इस युग में वानप्रस्थ आश्रम की अवधारणा वैदिक चतुराश्रम प्रणाली यानि जीवन के चार चरणों के हिस्से के रूप में सामने आई थी – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ (विवाहित जीवन), वानप्रस्थ (जब एक गृहस्थ चिंतन के लिए जंगल में जीवन यापन करता है) और संन्यास (तपस्वी जीवन)। ऋषियों ने वनों में गहन चिंतन किया और वनों में ही आरण्यकों की रचना हुई। ऋषियों ने वहाँ आश्रम बनाए जिससे अरण्य संस्कृति का प्रसार हुआ। महाजनपदों के युग में बुद्ध ने उरुवेला जंगल में एक बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने सारनाथ के एक हिरण उद्यान में अपना पहला उपदेश दिया था। इसी तरह महावीर ने साल के एक वृक्ष के नीचे तपस्या की और कैवल्य प्राप्त किया। वास्तव में जैन धर्म में यह माना जाता है कि सभी तीर्थंकरों ने एक पेड़ के नीचे

⁴ ऋग्वैदिक काल में आर्यों ने प्रकृति (सूर्य, चंद्रमा, नदी आदि) की विविध शक्तियों की पहचान की और उन्हें मानवरूप में पूजने लगे। उनके सबसे प्रमुख देवता इंद्र वर्षा के देवता थे और अग्नि दूसरे सबसे पूजनीय देवता थे। आग जंगलों को जलाने, खाना पकाने आदि में सहायक थी।

कैवल्य प्राप्त किया और इन वृक्षों को दीक्षावृक्ष (जागृति का वृक्ष) कहा जाता है।

हालांकि वनवासी जो अपने अस्तित्व के लिए जंगल पर निर्भर थे उन्हें अलग ढंग से अनुमानित किया जाता था। वेदों में ग्राम और अरण्य के बीच भेद करते हुए ग्राम को व्यवस्थित और ज्ञात स्थान के रूप में वर्णित किया गया है जबकि वन को अव्यवस्थित और अज्ञात के रूप में चित्रित किया गया है। इन क्षेत्रों के निवासियों को भी भिन्न देखा जाता था। वनवासियों को जंगली और अजीब कहा जाता था। यह धारणा बनी रही और जैसे-जैसे शहरीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ी, उन्हें सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से पिछड़े के रूप में चित्रित किया गया। रोमिला थापर के अनुसार मौर्य साम्राज्य द्वारा परिधीय क्षेत्रों के रूप में जंगलों को अक्सर मध्यवर्ती क्षेत्र (Buffer Zone) के रूप में देखा जाता था। वे साम्राज्य के प्रत्यक्ष प्रशासन के अधीन नहीं आते थे। वनभूमि के संसाधन राज्य द्वारा आटविकों (वनवासियों) के माध्यम से प्राप्त किए गए थे। उनकी प्रथाएं बसे हुए निवासियों से भिन्न थीं। आबादकार आटविकों को अप्रत्याशित मानते थे। जबकि आटविकों ने उन्हें आक्रामक माना। अर्थशास्त्र के अनुसार आटविकों के साथ कूटनीतिक तरीके से निपटा जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो उन्हें तुष्ट किया जाए।

वनों ने शिकार के लिए जंगली जानवर, चारा, लकड़ी, ईंधन, युद्ध के लिए हाथी, अर्ध-कीमती पत्थर और ऐसी अन्य संपत्ति भी प्रदान किए। एक मजबूत सेना के निर्माण में हाथी महत्वपूर्ण थे। उनका उपयोग किलों को ध्वस्त करने के लिए, दलदली क्षेत्रों और अन्य क्षेत्रों में किया जाता था जहां सड़कों और

संचार के साधनों की कमी थी। मगध सेना ने लकड़ी के बने रथों का उपयोग किया। पकी हुई ईंटों के इस्तेमाल से पहले लकड़ी और पत्थरों से मकान और तख्तियां बनाई जाती थीं। मौर्य काल में भी मुख्य निर्माण सामग्री लकड़ी थी। अशोक ने अपने अभिलेखों में घोषणा की कि जंगलों को या किसी जीव के विनाश के लिए आग नहीं लगाई जानी चाहिए। पेड़ों, पवित्र उपवनों और जंगलों को नष्ट करने पर जुर्माना लगाया जाता था। इस तरह वनों की रक्षा के लिए प्रयास किए गए लेकिन साथ ही मानव समाज की उन्नति के लिए उनका शोषण भी स्पष्ट था।

3.5 पशु और पौधे : पालतूकरण, प्रसार, भक्ति और रक्षा

मानव-पर्यावरण संबंध को समझने के लिए वनों के अलावा जानवरों और पौधों और उनके पालतूकरण, प्रसार और नियंत्रण का भी अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। इस खंड में आप देखेंगे कि प्रारंभिक समाजों ने पशु और पौधों का प्रबंधन कैसे किया। आइए पहले देखें कि मानव समाज की सामाजिक संरचना के निर्माण और पर्यावरण के साथ मानवीय संबंधों की संरचना में जानवरों ने कैसे योगदान दिया।

3.5.1 पशु और सामाजिक संरचना

हड़प्पावासियों ने कई जानवरों जैसे बैलों (कूबड़ वाले और बिना कूबड़ वाले), भैंस, बकरी, भेड़, सूअर आदि को पालतू बनाया। बाघ, हाथी, गैंडा और हिरण जैसे जंगली जानवरों से वे अवगत थे। इन्हें उनकी मुहरों पर चित्रित किया गया था। वैदिक काल के आर्य पशुपालक थे। उन्हें अपने मवेशियों के लिए

और विशेष रूप से अपने घोड़ों के लिए ताजा चारागाह की आवश्यकता होती थी क्योंकि मवेशियों के विपरीत घोड़े चरते समय घास की जड़ों को खींच लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप यह जल्दी वापस नहीं उगती हैं। इसके अलावा, क्योंकि कृषि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार नहीं था, वे चारा फसल नहीं उगाते थे। इसलिए उन्हें चारागाह की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था जिस कारण उनकी कोई गतिहीन जीवन शैली नहीं थी। वे खानाबदोश जनजाति थे। सरदार को गोपजनस्य कहा जाता था जिसका अर्थ था कि वह जनजाति और उसके मवेशियों का रक्षक था न कि किसी क्षेत्र का। ऋग्वेद में युद्ध के लिए गविष्टि शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ गायों की खोज होता है। वे लोग मुख्यतः अधिक से अधिक मवेशियों के कब्जे और चारागाह के लिए लड़ते थे। प्रारंभिक वैदिक संस्कृति में समृद्ध पुरुष, जिन्हें गोमठ कहा जाता था, वे थे जिनके पास कई मवेशी थे। इस प्रकार वैदिक काल में मवेशियों को अत्यधिक महत्व दिया गया क्योंकि वे अर्थव्यवस्था की रीढ़ थे। ऋग्वैदिक युग में आर्य पूषन नामक देवता को पूजते थे। आर्य मानते थे कि पूषन उनकी मवेशियों की देखभाल करते थे। उनके अनुयायी खोए हुए पशुओं और समृद्ध चारागाहों को खोजने के लिए उनकी पूजा करते थे। लेकिन उत्तर-वैदिक काल में पूषन शुद्धों के देवता बन गए। यह परिवर्तन इसलिए हुआ क्योंकि कृषि भूमि पशुपालन से अधिक महत्वपूर्ण हो गई थी।

उत्तर वैदिक काल में राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध बलिदान आदि जसे राजाओं के लिए विस्तृत बलिदानों का उदय हुआ। अश्वमेध (घोड़े की बली) में किसी राजा द्वारा अपने क्षेत्र का विस्तार करने के इरादे से एक प्रतिष्ठित घोड़े को

अपनी इच्छा से घूमने के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए मुक्त कर दिया जाता था और राजा के सैनिकों का एक समूह उस घोड़े के पीछे चलता। यदि घोड़ा अन्य शासकों के क्षेत्र में प्रवेश करता और रूक जाता तो उन्हें अपने-अपने प्रदेशों की रक्षा करनी पड़ती थी। यदि घोड़ा बिना किसी विरोध के किसी राज्य से होकर गुजरता था तो राज्य के शासक को अधीनता स्वीकार करनी होती थी। इस तरह अश्वमेघ के माध्यम से घोड़ा राजनीतिक शक्ति का प्रदर्शन करने का एक साधन बन गया। वर्ष के अंत में घोड़े को वापस राजधानी लाया जाता था और 600 बैलों के साथ उसकी बलि दी जाती थी फिर समारोह के समापन पर 21 बांझ मवेशियों की बलि दी जाती थी। बलि के बढ़ते पंथ ने समाज में ब्राह्मणों की स्थिति को काफी बढ़ा दिया क्योंकि ब्राह्मण पुजारी की देखरेख में कई बलिदान दिए जाने लगे थे। घरेलू धार्मिक समारोह छोटे-छोटे यज्ञों और अनुष्ठानों के साथ भी किए जाने लगे। यजुर्वेद से संबंधित तैत्तिरीय ब्राह्मण में बलिदान के लिए 180 घरेलू पशुओं का उल्लेख है। मवेशियों के अनुष्ठानिक बलिदान से पशुधन का विनाश हुआ। ऐसे पंथों और कर्मकांडों के खिलाफ महाजनपद काल में हम बौद्ध और जैन धर्म का उदय पाते हैं जो अहिंसा पर बल देते थे।

फिर भी पशु संसाधन का शोषण जारी रहा। हालाँकि हम ऐसे उदाहरण भी देखते हैं जहाँ उन्हें इस तरह से प्राप्त करने के प्रयास किए गए थे कि उनके अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए उनके प्राकृतिक आवासों को नुकसान न पहुँचे। दुनिया की सभी प्रारंभिक नदी घाटी सभ्यताओं में हाथी पाए जाते थे। हालाँकि जंगली हाथियों की आबादी मेसोपोटामिया में 850 बी.सी.ई. और चीन

में 500 बी.सी.ई. तक काफी घट गई थी, जबकि उत्तरी अफ्रीकी हाथी लगभग 300 बी.सी.ई. तक विलुप्त हो गए। लेकिन यह जानवर आज भी भारत के जंगलों में पाया जाता है। थॉमस आर. ट्रौटमैन का मानना है कि उन्हें विलुप्त होने से बचाने का कारण प्राचीन भारत में मौजूद हाथी-राजा का परस्पर संबंध है जिसने जंगल और पर्यावरण के संरक्षण में मदद की। शासक अपने क्षेत्रों की रक्षा और विस्तार के लिए युद्ध करते थे और युद्धों में हाथियों पर विशेष रूप से निर्भर थे। लेकिन हाथियों को जन्म से ही पालना आर्थिक रूप से संभव नहीं था क्योंकि उन्हें भारी मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। इसलिए उन्होंने हाथियों को पालतू बनाने के लिए एक अनोखा तरीका अपनाया। उन्हें पहले अपने प्राकृतिक आवास में वयस्कता प्राप्त करने दिया जाता था। इस कारण वे उन वनों को भी संरक्षित करने लगे जहाँ वे पाए जाते थे ताकि हाथी बड़ी संख्या में बढ़ सकें। इसके अलावा उन्हें पकड़ना मुश्किल था और उन्हें पकड़ने के लिए बड़ी जनशक्ति की आवश्यकता थी। इसलिए केवल राजा ही उन्हें रख सकते थे। अथर्ववेद में जंगली जानवरों को पकड़ने और प्रशिक्षित करने का उल्लेख है। चार्ल्स सिंटियापिल्लई और एस. विजयमोहन के अनुसार दक्षिण भारत के द्रविड़ों ने उत्तर में आर्यों से बहुत पहले जंगली हाथियों को पकड़ने और उन्हें वश में करने की कला की खोज की थी।

मौर्य शासक अशोक के अभिलेखों में भी पशुओं के संरक्षण के प्रयासों को प्रदर्शित किया गया है। इन शिलालेखों में धार्मिक बलि के लिए शिकार और पशु वध पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। अशोक के पांचवें स्तंभ शिलालेख को भारत में वन्यजीवों के संरक्षण के लिए किए गए उपायों के शुरुआती अभिलेखों

में से एक माना जाता है। इस शिलालेख में उन जानवरों और पक्षियों की एक सूची है जिनका वध निश्चित दिनों में निषिद्ध था। इसमें कबूतर, बत्तख, कछुआ, हिरण, छिपकली, गैंडा आदि जैसे जानवरों और पक्षियों की एक और सूची थी जो किसी भी अवसर पर ऐसे जीव-जंतुओं के वध को मना करते थे। इस शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि अशोक ने घोड़ों के बधियाकरण (castration) और दाहांकन (branding) पर भी रोक लगा दी थी। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि कृषि क्षेत्रों में भूसी को नहीं जलाया जाए ताकि उसमें रहने वाले कीड़ों और जानवरों की रक्षा हो सके। अशोक ने पशु चिकित्सालय खोले थे। संभवतः मौर्यों के समय में शालिहोत्र द्वारा शालिहोत्र संहिता लिखा गया था जिन्हें भारत में पशु चिकित्सा विज्ञान का जनक माना जाता है। यह संस्कृत ग्रंथ घोड़ों और हाथियों के शरीर रचना विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, रोगों, शल्य चिकित्सा और उपचार का विवरण प्रदान करता है।

नंदों के पास 3,000 युद्ध के लिए हाथी थे। चंद्रगुप्त मौर्य के पास 9,000 हाथी थे। कौटिल्य का यह मानना था कि दुश्मन सेना का विनाश हाथियों पर निर्भर था। मौर्य युद्ध कला ने यूनानी युद्ध कला को प्रभावित किया। मौर्य सेना में प्रत्येक युद्ध हाथी अपनी पीठ पर एक महावत और तीन धनुर्धारियों को लेकर चलता था। चंद्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेनापति सेल्यूकस निकेटर को 500 हाथी उपहार में दिए थे जिनका इस्तेमाल उन्होंने पश्चिम एशिया में अपने यूनानी विरोधियों के खिलाफ किया था। उसने अपने प्रत्येक युद्ध हाथी की पीठ पर चार धनुर्धारियों को सवार होने का आदेश दिया। इसके बाद उसके प्रतिद्वंद्वियों ने भी हाथियों को युद्ध जानवर के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया।

इसी तरह खारवेल और पूर्वी गंगा (आधुनिक ओडिशा) के राजवंशों की सेनाओं के लिए भी हाथी बहुत महत्वपूर्ण थे। पाँचवीं शताब्दी का यूनानी व्यापारी कौसमास अपने लेख 'कौसमास इंडिकोप्लेस्ट्स' में लिखता है कि सीलोन (आधुनिक श्रीलंका) के शासक कलिंग के साथ व्यापार के द्वारा हाथियों की खरीददारी कर उन्हें अपनी सेना में युद्ध के लिए उपयोग करते थे। समुद्री क्षेत्र में स्थित कलिंग का दंतपुरा हाथी दांत के लिए प्रसिद्ध था। पुरातात्विक खुदाई से पता चलता है कि प्राचीन ओडिशा में एक संपन्न हाथीदांत उद्योग था। दक्षिण-पश्चिम ओडिशा की तेल⁵ नदी घाटी में उत्तर लौह युग-प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के दौरान बस्तियों का निर्माण महानदी की प्रमुख और छोटी सहायक नदियों के तटों पर किया गया था। पाणिनि इस क्षेत्र और इसकी व्यावसायिक गतिविधियों के कुछ अप्रत्यक्ष संदर्भ देते हैं। हाल के पुरातात्विक खोज से मिले गैंडे के लोलक (pendant), छिद्रित सिक्कों पर उभरे गैंडे की आकृति बताते हैं कि यह जानवर घाटी में पाया जाता था। अर्थात् जानवरों और पशु उत्पादों का व्यापार किया जाता था और जल निकायों के पास बसी बस्तियों ने उनके आवागमन को बहुत सरल और लाभदायक बना दिया था।

3.5.2 वानस्पतिक आदान-प्रदान

2500 बी.सी.ई. और 100 सी.ई. के बीच मानव द्वारा पौधों का वितरण हुआ जिससे उन क्षेत्रों के समाज और पर्यावरणीय वातावरण में बदलाव देखे गए।

⁵ तेल महानदी की एक प्रमुख सहायक नदी है।

खेती पौधों का आदान-प्रदान हिंद महासागर से महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे पूर्वी अफ्रीका, अरब, दक्षिणी एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में हुआ। इस प्रसार ने इन क्षेत्रों के कृषि परिदृश्य को फिर से आकार दिया होगा। 18वीं सदी तक दीर्घकालीन और अविरल समुद्री संपर्क को 'मानसून विनिमय' या 'मानसून का साम्राज्य' कहा गया है। भले ही "पेरिप्लस ऑफ़ द एरिथ्रियन सी" ने मानसून की खोज के लिए यूनानी नाविक हिप्पलस को मान्यता दी हो, हमारे पास हिंद महासागर की दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों से यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि हिंद महासागर में यूनानी और रोमन नाविकों के आगमन से पहले इस क्षेत्र के शुरुआती नाविक मौसमी रूप से बदलते हवा के स्वरूप से अवगत थे जिसके कारण वे लंबी दूरी की यात्राओं पर निकल सकते थे।

अफ्रीका से भारतीय उपमहाद्वीप में लाए गए खाद्य पौधे:

खाद्य पौधे	भारतीय उपमहाद्वीप में अफ्रीकी खाद्य पौधों का आगमन
● ज्वार	परिपक्व हड़प्पा चरण में सिंधु घाटी (लगभग 2500-2000 बी.सी.ई.)।
● बाजरा	पहले तिलमसी/टेलीमिस घाटी (आधुनिक माली में) में इसका पालतूकरण हुआ और फिर उत्तर-हड़प्पा चरण (लगभग 2000-1700 बी.सी.ई.) में सौराष्ट्र, कच्छ और राजस्थान सहित अन्य क्षेत्रों में फैलाव हुआ।
● जलकुंभी बीन	उत्तर-हड़प्पा चरण।
● लोबिया	पूर्वी सिंधु और ऊपरी गंगा क्षेत्रों में उत्तर-हड़प्पा चरण के अंत से पहले।
● रागी	लगभग 1500-1000 बी.सी.ई.।

● इमली	सूडान क्षेत्र का मूल पौधा। इसका संदर्भ वैदिक साहित्य में 1600 बी.सी.ई. में मिलता है।
--------	--

अन्य खाद्य फसलें जो अफ्रीका से उपमहाद्वीप में लाई गई थीं:

- जंबी मनका
- कुलथी
- करेला
- बलसम सेब
- भिन्डी
- नाइजर नूग
- तरबूज
- ग्वार फली (ग्वार फली संभवतः दक्षिण भारत में अफ्रीका से अरब व्यापारियों द्वारा लाया गया थी।)

कुछ खाद्य फसलें निम्नलिखित हैं जो दक्षिण-पूर्व एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप से अफ्रीका लाई गई थीं:

- केला
- नारियल
- अरबी
- पानी याम (जायोस्कोरिया अल्ता)

जब तक हिंद महासागर में यूनानी-रोमन दुनिया के साथ समुद्री व्यापार शुरू हुआ तब तक कीमती वस्तुओं जैसे गैंडे के सींग, कछुए के कचकड़े, मसाले, लोहबान, चीनी आदि के आदान-प्रदान से कई विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे के

संपर्क में आए और पूर्वजगत (अफ्रीका, यूरोप और एशिया) के विभिन्न क्षेत्रों के मूल वनस्पतियों और जीवों से अधिक परिचित हुए जिससे पूर्वजगत की परिस्थितिकी में परिवर्तन हुए।

बोध प्रश्न 1

1) प्रारंभिक समाजों में जल संसाधनों की भूमिका का आकलन करें और बताएं कि मानव गतिविधियों ने उन्हें कैसे प्रभावित किया।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

- i) हिंद महासागर में यूनानी और रोमन नाविकों के आगमन से पहले वानस्पतिक आदान-प्रदान
- ii) विदेघ माधव
- iii) आटविक
- iv) अशोक के शिलालेख और पशु संरक्षण

3.6 कृषक समाज और शहरीकरण

इस खंड में आप मानव बस्तियों और कृषि भूमि के विस्तार की प्रक्रिया के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन भारत में शहरीकरण दो अलग-अलग चरणों में हुआ:

पहला शहरीकरण,

दूसरा शहरीकरण।

सिंधु घाटी सभ्यता ने अपने नियोजित और किलेबंद शहरों के साथ भारत में पहला शहरीकरण शुरू किया। इसकी कृषि तकनीक भी विकसित थी। हड़प्पा के लोग सिंधु के बाढ़ के मैदानों में मसूर, सरसों, गेहूँ, कपास, बाजरा और जौ उगाते थे। वार्षिक बाढ़ के बाद रबी की फसल बोई जाती थी। हड़प्पा सभ्यता के लोग बुने हुए कपड़े के लिए कपास उगाने वाले सबसे पहले लोग थे। कालीबंगा में जुताई वाले खेतों की खोज हुई है जो माना जाता है कि पूर्व-हड़प्पा स्तर के थे। और यह भी दर्शाता है कि खेतों की जुताई की जाती थी और संभवतः वे बैलों और ऊंटों जैसे जानवरों द्वारा खींचे गए लकड़ी के हल का इस्तेमाल करते थे। मोहनजोदड़ो, बनावली और भावलपुर से हल के पकी मिट्टी (Terracotta) से बनी कलाकृतियाँ मिली हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में ईंट से बने अन्न भंडार के अस्तित्व से यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कृषि फसलों का उत्पादन अधिशेष में किया। ऐसा लगता है कि कर अनाज के रूप में एकत्र किए जाते थे। खाद्य अधिशेष ने बढ़ती शहरी आबादी को बढ़ावा दिया। हालांकि शहरीकरण प्रक्रिया में निरंतरता के किसी भी निशान के बिना सभ्यता का पतन हो गया। कोई शहरी केंद्र नहीं बचा।

वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्यतः पशुचारण और पशुपालन पर आधारित थी जिसमें पशु धन का पर्याय थे। उसी के अनुसार सामाजिक संगठन की संरचना की गई थी। लोग अविकसित कृषि, स्थानांतरित कृषि और झूम कृषि में संलग्न थे। उत्तर-वैदिक काल में समाज का स्वरूप स्पष्ट रूप से बदल रहा था। कृषि महत्वपूर्ण हो गई और भूमि के महत्व में वृद्धि हुई। लेकिन पशुचारण भी जारी रहा। हम इस अवधि के दौरान लोहे के उपयोग की शुरुआत देखते हैं और लोहे के हल के प्रमाण मिलते हैं लेकिन लोहे के कृषि उपकरण दुर्लभ थे। महाजनपदों के युग के दौरान कृषि में लोहे के औजारों का उपयोग आम हो गया।

600 बी.सी.ई. से गंगा के मैदानी इलाकों में बड़ी शहरी बस्तियों का विकास हुआ। सिंधु घाटी सभ्यता के शहरों के लुप्त होने के बाद यह पहली बार था कि शहरी केंद्र विकसित हुए। क्रमशः दूसरा शहरीकरण 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. तक उत्तर भारत से दूसरे क्षेत्रों में फैला। गंगा घाटी के पुराने शहर जैसे तक्षशिला, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी, उज्जैनी आदि फलते-फूलते रहे जबकि बंगाल, ओडिशा, दक्कन और तमिलहम में नए शहरी केंद्र अस्तित्व में आए। इस प्रकार पहले शहरीकरण के विपरीत दूसरे शहरीकरण ने कई नए शहरों को विकसित किया और पुराने शहर आज भी मौजूद हैं। हालांकि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विविध आबादी और जटिल प्रणालियों वाले कई महत्वपूर्ण शहरों के प्रमुख होने के बावजूद गैर-कृषि शहरी क्षेत्रों का कृषि क्षेत्रों के साथ संबंध बना रहा क्योंकि उपजाऊ कृषि भूमि से अधिशेष उपज राज्य के लिए राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक थी।

मौर्य काल के दौरान राज्य ने कृषि भूमि की अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन का प्रयास किया जबकि परिधीय क्षेत्रों में मौर्य साम्राज्य ने अपना प्रत्यक्ष प्रशासन स्थापित नहीं किया और इसलिए वनभूमि में मौर्य शासकों ने वन-निवासियों के माध्यम से उपलब्ध संसाधनों का दोहन किया। उपजाऊ कृषि भूमि का एक बड़ा भाग राजा के सीधे नियंत्रण में था और इसे 'सीता' कहा जाता था। ऐसी राज्य के स्वामित्व वाली भूमि से राजस्व शाही आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत था। और उनकी देखभाल के लिए कृषि का एक अलग विभाग बनाया गया जिसका अध्यक्ष 'सीताध्यक्ष' था। पूर्व मौर्य काल में हमें राज्य के स्वामित्व वाले बड़े खेतों के बहुत कम संदर्भ मिलते हैं। सीताध्यक्ष गुणवत्ता वाले बीजों की खरीद, संरक्षण और वितरण के लिए जिम्मेदार था। कौटिल्य ने विभिन्न फसलों को तीन भागों में वर्गीकृत किया है :

- गीली फसलें (केदार)
- सर्दियों की फसलें (हैमान)
- गर्मी की फसलें (ग्रैशमिक)

उन्होंने सीताध्यक्ष को पानी और श्रमशक्ति के आधार पर इन्हें विकसित करने का सुझाव दिया और कहा कि कृषि कार्यों में कोई देरी बर्दाश्त नहीं की जानी चाहिए। इस प्रकार राज्य अपने अधिकारियों के माध्यम से कृषि गतिविधियों और इसके अनुप्रयोगों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने में सक्रिय रूप से लगा हुआ था। हम प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य का अधिक नियंत्रण देखते हैं। कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि गोपों (ग्राम लेखाकारों या राजस्व अधिकारियों) को पाँच या 10 गाँवों के खातों को बनाए रखने का कार्य था और खेती (कृष्ट)

और अकृष्ट भूमि, मैदान, दलदली इलाक़ें, उद्यान, सब्जी उद्यान, बाड़, जंगल, सिंचाई कार्य (सेतुबंध), चरागाह मैदान, सड़कों आदि का पंजीकरण वे करते थे। इस तरह के अभिलेख राज्य को अपने संसाधनों के बारे में सूचित करने में सहायक थे। मौर्योत्तर काल में मध्य-गंगा के मैदान के जंगलों की कटाई लोहे के उपयोग से की गई ताकि क्षेत्र की समृद्ध उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी में खेती की जा सके। चूंकि कृषि भूमि के विस्तार का मतलब अधिक राज्य राजस्व था इसलिए इसे राज्य से बहुत समर्थन मिला। वनों पर अतिक्रमण की कीमत पर मानव बस्तियों और कृषि क्षेत्रों का विस्तार हुआ क्योंकि जैसा कि हमने पहले पढ़ा था कि वन धातु खनिजों को गलाने के लिए, घर निर्माण आदि के लिए लकड़ी के स्रोत थे जिस कारण वनों की कटाई हुई। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इस तरह की मानवजनित गतिविधियों ने पारिस्थितिक असंतुलन पैदा कर दिया।

दक्षिण भारत में शहरीकरण के संबंध में ऐसा लगता है कि कावेरी घाटी को कृषि समुदायों द्वारा लौह युग की शुरुआत में ही बसाया गया था। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में बस्तियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और संगम युग का आगमन हुआ। तमिल संगम साहित्य से हमें पता चलता है कि तमिलहम पांच पर्यावरणीय विभागों में विभाजित था। इन्हें ऐन्दु तिनै कहा जाता था। प्रत्येक तिनै/तिनाई की अपनी विशिष्ट जलवायु, वनस्पति और जीव थे जिसके आधार पर वहाँ बसने वालों का व्यवसाय था। उनका व्यवसाय, उनके देवता आदि उस वातावरण का परिणाम थे जिसमें वे निवास कर रहे थे। मरुतम (नदी घाटियाँ) सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रीय पारिस्थितिकी थी। इस नदी मुख-भूमि में कृषि भूमि का

गठन किया गया। प्राकृतिक और कृत्रिम सिंचाई के माध्यम से धान की खेती को प्रोत्साहित किया गया। नेयतल और मरुतम दोनों में शहरी बस्तियों का उदय हुआ। नेयतल पहली सदी में प्रमुख क्षेत्रीय विभाग में उभरा क्योंकि इसके तटीय क्षेत्र में समुद्री व्यापार फला-फूला। संगम युग की प्रमुख विशेषता समुद्री व्यापार था जिसने शहरी विकास को गति दी। इसके परिणामस्वरूप प्रारंभिक चरण में मरुतम की तुलना में नेयतल में उच्च स्तर का शहरीकरण देखने को मिला। इस प्रकार संगम युग में तमिलहम में सामाजिक संरचना इसके पर्यावरणीय परिवेश से प्रभावित थी। राज्यों के गठन के साथ हम पाते हैं कि शासकों ने राज्य के राजस्व को बढ़ाने और अपने शक्ति आधार को व्यापक बनाने के लिए वनों की कटाई में रूचि ली। उदाहरण के लिए, दूसरी सदी में करिकाल चोल ने कृषि भूमि के विस्तार के लिए, जंगलों को साफ़ किया। उन्होंने कावेरी के पानी का उपयोग करके सिंचाई की सुविधा भी प्रदान की। अतः राज्य ने प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन किया और साथ ही अपने प्रबंधन के लिए अपनी नौकरशाही का विस्तार किया ताकि अपने नियंत्रण को बढ़ाया जा सके और अपने प्रभाव का विस्तार किया जा सके।

तिनै	भौगोलिक परिदृश्य का विवरण	प्रमुख देवता	निवासियों का व्यवसाय
कुरिंजी	पर्वत	मुरुगन (युद्ध के देवता)	शिकार, मधु संग्रह
मुलई/मुलै	वन	मेयोन (विष्णु)	पशुचारण और स्थानांतरण कृषि
मरुतम	नदी घाटियों में कृषि भूमि (बहुत)	इंद्र (वर्षा देवता)	कृषि

	उपजाऊ)		
नेयतल	तटीय क्षेत्र	वरुणन (पानी के देव, समुद्री देवता)	मछली पकड़ना और नमक विनिर्माण
पालई / पालै	बंजर भूमि / रेगिस्तान (रेतीले और शुष्क)	कोर्रवाई (युद्ध की देवी)	डकैती, लूट (वे चोरी के मवेशियों को बरामद करने या मवेशियों को चुराने के लिए अपने प्रमुखों के लिए लड़ते थे)।

3.7 खनिज संसाधन

प्रारंभिक समाजों के विकास में खनिज संसाधनों, विशेषकर धातु संसाधनों, की खोज ने विज्ञान की नई तकनीकों का विकास किया और कांस्य का उपयोग करना शुरू कर दिया और इसलिए इस सभ्यता को कांस्य युग की सभ्यता भी कहा जाता है। लेकिन राँगा (tin) की उपलब्धता कम थी। इसे वर्तमान राजस्थान, दक्षिण मध्य प्रदेश और बिहार और अफगानिस्तान से प्राप्त किया जाता था। और क्योंकि कांस्य तांबे और राँगे का मिश्र धातु है इसलिए हमें ऐसे उपकरण नहीं मिले हैं जो अधिकतर कांस्य से बने होते थे। यह सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों से था जब म्यांमार और मलय प्रायद्वीप के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए गए थे कि कांस्य का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाने लगा।

लोहे के प्रयोग ने गंगा की घाटी का परिदृश्य बदल दिया। लोहे को डी. डी. कोसांबी, आर. एस. शर्मा और कुछ अन्य इतिहासकारों ने एक प्रमुख कारक और कृषि विस्तार के लिए एक तकनीकी निर्धारक के रूप में देखा। गंगा घाटी के क्षेत्र की तुलना में सिंधु क्षेत्र में कम वार्षिक वर्षा होती थी। और पश्चिमी गंगा घाटी में मध्य गंगा घाटी की तुलना में कम वार्षिक वर्षा होती थी। घने वनस्पतियों के साथ जंगल की कटाई करने के लिए लोहे जैसी मजबूत धातु की आवश्यकता थी। लोहे की कुल्हाड़ी के उपयोग ने आर्यों को मध्य गंगा क्षेत्र में आगे बढ़ने में सक्षम बनाया जहां लोहे के हल और गीले धान की खेती पर आधारित अर्थव्यवस्था ने शहरीकरण को बढ़ावा दिया और अंततः जनपदों को महाजनपदों में विकसित किया। हालांकि इस प्रस्ताव का इतिहासकारों द्वारा विरोध किया गया है जो यह मानते हैं कि कृषि अधिशेष सत्ता संरचना की राजनीतिक-प्रशासनिक मांग थी। हाल के निष्कर्षों के अनुसार लोहे के औजारों का उपयोग 1700-1100 बी.सी.ई. का है लेकिन उनके उपयोग से शहरी बस्तियों का तत्काल विकास नहीं हुआ। 600 बी.सी.ई. में ही हमने महाजनपदों का उदय देखा था। लौह युग की शुरुआत में अंतरजीखेड़ा और नोह जैसे महत्वपूर्ण स्थलों ने लोहे के औजारों का उत्पादन किया लेकिन अधिकतर वे हथियार और संख्या वाले कृषि उपकरण थे। फिर भी लोहे के उपयोग ने प्रारंभिक मानव समाज को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया।

समृद्ध खनिज अयस्क भंडार तक पहुंच अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण थी क्योंकि इससे लड़ाई और कृषि में उपयोग किए जाने वाले परिष्कृत उपकरण बनाने में मदद मिली। मगध साम्राज्य की भौगोलिक स्थिति बहुत लाभकारी थी। लौह

युग में इस साम्राज्य की पहली राजधानी के रूप में छोटा नागपुर क्षेत्र में राजगृह के पास समृद्ध लौह भंडार था। लौह अयस्क की उपलब्धता ने विशेष रूप से युद्ध के लिए लोहे के आजारों के निर्माण में सहायता की जो उनके प्रतिद्वंद्वी राज्यों के लिए आसानी से उपलब्ध नहीं था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि मौर्य साम्राज्य का खनिज संसाधनों पर पूर्ण नियंत्रण था। इस कारण राज्य का धातुकर्म कार्यों जैसे हथियारों और सिक्कों का निर्माण और नमक और खनन उद्योग पर विशेष नियंत्रण था। “अकराध्यक्ष” खनन का अधीक्षक था और उसे खानों, धातु विज्ञान, रत्नों और कीमती पत्थरों का वैज्ञानिक ज्ञान था। उसका प्रमुख कार्य पुरानी और अनुपयोगी खानों को फिर से खोलना और नई खदानों को खोलना था। अर्थशास्त्र से कृषि भूमि से एकत्र किए गए करों के अलावा शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ खनन कार्यों (खानी) से कई प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है। तमिलहम में वल्लम पठार में कई लौह गलाने वाले स्थल पाए गए हैं जो मखराला (laterite) लोहे का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। लौह युग से शायद यह पठार पूरे कावेरी दहाने के लिए एक स्रोत था। लौह प्राद्यौगिकी के प्रसार ने मुखियातंत्रों के गठन में मदद की जो अंततः राज्यों में विकसित हुए।

बोध प्रश्न 2

- 1) प्राचीन भारत में कृषिकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया ने प्रारंभिक समाजों की पारिस्थितिकी को कैसे प्रभावित किया?

.....
.....

2) निम्नलिखित को समुचित करें:

कॉलम क	कॉलम ख
क) अथर्ववेद	i) नदी नहरीकरण
ख) अरण्य संस्कृति	ii) घोड़ों और हाथियों के बारे में जानकारी देता है।
ग) शालिहोत्र संहिता	iii) क्रमिक बदलाव
घ) हड़प्पावासियों का प्रादेशिक प्रवास	iv) ऋषियों ने वनों में आश्रम बनाया और वहाँ निवास किया।

3.8 सारांश

प्रारंभिक समाजों में बस्तियों का स्थान और निर्वाह प्रतिरूप मुख्य रूप से प्राकृतिक पर्यावरणीय परिवेश द्वारा निर्धारित किया गया था। नदी घाटियां या नदी और उसकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित समृद्ध उपजाऊ मैदान मानव बस्तियों के उद्भव के लिए उपयुक्त क्षेत्र थे। इस प्रकार प्रारंभिक समाजों के प्रसार में नदियों की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। प्रारंभ में प्रकृति के विरुद्ध मानव का संघर्ष मुख्य रूप से विविध प्राकृतिक शक्तियों और परिस्थितिकी को समझने की दिशा में था। जानवरों और पौधों के पालतूकरण के साथ-साथ उन्हें फैलाने का प्रयास किया गया ताकि मनुष्य के लाभ के लिए उनका शोषण किया जा सके। उत्तर भारत में प्रारंभिक समाजों में

कृषिकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के माध्यम से विभिन्न चरणों में प्राप्त किए गए थे। गंगा-यमुना दोआब में अर्ध-घुमंतु आर्य समाज उत्तर-वैदिक काल के दौरान एक कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गया था। 600-200 बी.सी.ई. के बीच गंगा घाटी का बड़े पैमाने पर उपनिवेशीकरण स्पष्ट था। लौह के हल से खेती के विस्तार के परिणामस्वरूप वन भूमि का विनाश हुआ और संसाधन उपयोग के मौजूदा स्वरूप में बदलाव आया। उत्तर-वैदिक संस्कृति गंगा की मध्य घाटी में समृद्ध हुई। निचली गंगा घाटी और उत्तरी बंगाल गुप्त काल के दौरान प्रमुखता में आए। इन उपजाऊ नदी घाटियों और मैदानों पर कब्जा करने के लिए राजनीतिक संस्थाओं ने युद्ध किए। दक्षिण में संगम युग के दौरान तटीय और नदी घाटियां समृद्ध हुईं और विषम भूगोल ने यहां राज्य गठन की प्रक्रिया को प्रभावित किया। मानवीय गतिविधियों ने स्थलाकृति को बदल दिया। पर्यावरणीय नियतिवाद ने प्रारंभिक समाजों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और प्राकृतिक परिवेश के परिवर्तन में मानव की भी भूमिका थी। अस्तित्व के संघर्ष में मानवजनित गतिविधियाँ निश्चित रूप से पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित थीं लेकिन मानवीय गतिविधियाँ भी पर्यावरणीय वातावरण को प्रभावित करने लगीं।

3.9 शब्दावली

जलसंशोधन : जलसंशोधन के माध्यम से कुछ परिभाषित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से जल प्रबंधन के लिए नदियों के प्राकृतिक मार्ग में मानव हस्तक्षेप किया जाता है।

शुष्कीकरण : किसी क्षेत्र की जलवायु में आर्द्र से अधिक शुष्क जलवायु में क्रमिक परिवर्तन की प्रक्रिया।

पर्यावरणीय नियतिवाद : मानव गतिविधियों और मानव समाज के विकास को निर्धारित करने वाले पर्यावरणीय कारकों का अध्ययन। यह अन्य कारकों जैसे कि समाज के विकास में मानव क्रियाएं आदि को ध्यान में नहीं रखता है।

पर्यावरणीय पर्यावरण : पर्यावरणीय कारक जैसे भूमि, जल, जलवायु वनस्पति और जीव आदि जो मानव पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण हैं।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) खंड 3.3 देखें।
- 2) खंड 3.4, 3.5 और 3.6 देखें।

बोध प्रश्न 2

- 1) खंड 3.2, 3.3 और 3.6 देखें।
- 2) (क)–(i), (ख)–(iv), (ग)–(ii), (घ)–(iii)

Amirthalingam, M. (2020). 'History of Water Bodies in India'. In Ranjan Chakrabarti (Ed.), *Critical Themes in Environmental History of India*. New Delhi: Sage Publications.

Bhattacharya, Pranab Kumar. (2012). 'Irrigation and Agriculture in Ancient India'. *Proceedings of the Indian History Congress*, Vol. 73, 18-34. Retrieved from www.jstor.org/stable/44156816.

Chakravarti, Ranabir. (2013). *Exploring Early India (up to c. AD 1300)*. New Delhi: Macmillan.

Fisher, Michael H. (2018). *An Environmental History of India: From Earliest Times to the Twenty-first Century*. Cambridge: Cambridge University Press.

Gaur, A. S., Vora, K. H., Sundaresh, Murali, R. Mani and Jayakumar, S. (2013). 'Was the Rann of Kachchh Navigable during the Harappan Times (Mid-Holocene)? An Archeological Perspective'. *Current Science*, 105(11), 1485-1491. Retrieved from www.jstor.org/stable/24098848.

Jain, V. K. (1991). 'Dynamics of Hydraulic Activity in Mauryan and Post-Mauryan Times'. *Proceedings of the Indian History Congress*, Vol. 52, 162-169. Retrieved from www.jstor.org/stable/44142581.

Jha, Murari Kumar. (2014). 'Migration, Settlement, and State Formation in the Ganga Plain: A Historical Geographic Perspective'. *Journal of the Economic and Social History of the Orient*, 57 (4), 587-627. Retrieved from www.jstor.org/stable/43303604.

Ranjan, Haripriya, Carney, Judith, Denham, Tim. (2012). 'Environmental History of Botanical Exchanges in the Indian Ocean World'. *Environment and History*, 18(3), 311-342. Retrieved from www.jstor.org/stable/23250939.

Roy, Kaushik. (2015). *Warfare in Pre-British India – 1500 BCE to 1740 CE*. London and New York: Routledge.

Thakur, Vijay Kumar. (1997). 'Urban Decay, Ecological Imbalance and the *Birhat Samhita*'. *Social Scientist*, 25 (5/6), 13-32. Retrieved from www.jstor.org/stable/3517826.

Trautmann, Thomas R. (2015). *Elephants and Kings: An Environmental History*. Chicago: University of Chicago Press.